Shodh Sangam Patrika
E-ISSN: 3049-0707, P-ISSN: 3049-172X, Volume 2 | Issue 2 | (Apr – Jun 2025)

श्रेष्ठ समाज के निर्माण में यम – नियम की भूमिका

धर्म वीर शर्मा [1], डॉ भारत वेदालंकार [2]
[1] शोधछात्र, दर्शनशास्त्र विभाग, गुरुकुल काँगड़ी समविश्वविद्यालय, हरिद्वार
[2] असि. प्रो., दर्शनशास्त्र विभाग, गुरुकुल काँगड़ी समविश्वविद्यालय, हरिद्वार

शोध सार

योग भारतीय ज्ञान परम्परा की एक ऐसी विधा है जिसे दर्शन के प्रत्येक वर्ग ने स्वीकार किया है। क्योंकि योग केवल सैद्धांतिक ज्ञान प्रदान नहीं करता अपितु व्यवहार में अंगीकार किया जाता है। बड़े-बड़े ऋषि, तपस्वी योग मार्ग का अनुसरण जीवन के परम पुरुषार्थ अर्थात मोक्ष की प्राप्ति के लिए करते हैं। परंतु योग केवल ऋषि-महात्मा आदि तपस्वियों के लिए नहीं है वरन् योग सामान्य जन मानस के लिए भी उतना ही उपयोगी है। योग के द्वारा व्यक्ति का समग्र विकास होता है। योग मानव जीवन के प्रत्येक स्तर को प्रभावित करता है। शारीरिक, मानसिक, आर्थिक, सामाजिक और आध्यात्मिक उन्नति के लिए योग का पालन प्रत्येक व्यक्ति के लिए आवश्यक है। योग समाज को उन्नत बनाने, शिष्ट बनाने तथा श्रेष्ठ बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। योगदर्शन में अष्टांग योग के अंतर्गत प्रतिपादित यम और नियम दो ऐसे आधारभूत साधन हैं जिनके पालन से व्यक्ति की आत्मिक उन्नति होती है तथा सामाजिक समरसता की भवन जागृत होती है।

कुंजी शब्द – योग, यम, नियम, समाज, नैतिकता

प्रस्तावना

योग वैदिक परम्परा की अति प्राचीन विद्या है। वेद, उपनिषद, दर्शन, भगवद्गीता, आदि आर्ष ग्रन्थों में योग विद्या का प्रतिपादन किया गया है। योग की इस विस्तृत विद्या को सूत्रबद्ध करके व्यवस्थित करने का श्रेय महर्षि पतंजलि को जाता है, जिन्होंने योगसूत्र की रचना की। पातञ्जल योगसूत्र में वर्णित अष्टांग योग एक सुव्यवस्थित मार्ग है जिस पर चलकर मनुष्य अपने परम लक्ष्य की प्राप्ति कर सकता है। अष्टांग योग न केवल योग साधकों के लिए है अपितु सामान्य जन मानस के लिए भी बहुत उपयोगी है। अष्टांग योग के प्रत्येक चरण की अपनी महत्ता है जो समाज में रहने वाले प्रत्येक मनुष्य के लिए ग्राह्य है। किसी भी समाज को श्रेष्ठ बनाने के लिए किसी ऐसी व्यवस्था का होना आवश्यक है जिसमे वें अवयव सम्मिलित हों जिनका पालन करने से व्यक्ति की सद्गुणों में प्रवृत्ति हो तथा उसके दुर्गुणों का नाश हो सके। क्योंकि वर्तमान में अमानवीय कृत्यों की वृद्धि हो रही है। भ्रष्टाचार, चोरी, यौन शोषण आदि आपराधिक गतिविधियां दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही हैं। इन सभी को रोकना बहुत आवश्यक है, इनको रोकने के लिए न्यायिक व्यवस्था भी है लेकिन फिर भी समाज में ऐसे कृत्य होते रहते है। इन अपराध को केवल संस्कार से रोका जा सकता है। इसलिए एक ऐसी व्यवस्था की आवश्यकता है जो अच्छे संस्कारों से सुसज्जित समाज का निर्माण कर सके। प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य अष्टांग योग के अंतर्गत प्रतिपादित यम और नियम की श्रेष्ठ समाज के निर्माण में उपादेयता सिद्ध करना है।

श्रेष्ठ समाज

किसी भी समाज को उन्नत बनाने के लिए प्रत्येक व्यक्ति में श्रेष्ठ मानवीय गुणों का होना आवश्यक है। अब प्रश्न उठता है कि वें कौन से मानवीय गुण है जिनके पालन से श्रेष्ठ समाज का निर्माण हो सके। दया, सत्यता, ईमानदारी, परोपकार, संतोष आदि सदाचरण सम्बन्धी तत्त्वों के प्रति अगाध श्रद्धा से युक्त गुण समाज को श्रेष्ठ बनाने मे सहायक हैं। यम-नियमों का पालन करना नैतिकता है। इनके पालन करने से व्यक्ति और समाज दोनों का निर्माण होता है।[1] अनुशासित नागरिक ही एक श्रेष्ठ समाज की नीवं होते है। नैतिकता और संयम श्रेष्ठ समाज के मूलभूत सिद्धांत हैं। जहां व्यक्ति अपने कर्त्तव्यों का पालन करे, एक दूसरे के अधिकारों का सम्मान करे तथा सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक दृष्टि से समरसता के साथ जीते हैं वहीं एक स्वस्थ समाज की परिकल्पना की जा सकती है।

अष्टांग योग

महर्षि पतंजलि प्रणीत योगसूत्र योग का अतुलनीय ग्रन्थ है। इसमें चार पाद हैं – समाधिपाद, साधनपाद, विभूतिपाद और कैवल्यपाद। साधनपाद के अंतर्गत अष्टांग योग का वर्णन महर्षि पतंजलि ने किया है। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि योग के आठ अंग हैं।[2]

महर्षि पतंजलि के अनुसार यम और नियम का स्वरूप इस प्रकार है -

यम – अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये पाँच यम हैं।[3]

नियम – शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान ये नियम हैं।[4]

संस्कारविधि में महर्षि दयानंद सरस्वती ने लिखा है – "यमों का सेवन नित्य करें, केवल नियमों का नहीं क्योंकि यमों को न करता हुआ और केवल नियमों का सेवन करता हुआ भी अपने कर्त्तव्य से पतित हो जाता है। इसलिए यम सेवन पूर्वक नियम सेवन नित्य किया करे।"[5]

यम- नियम तथा श्रेष्ठ समाज के निर्माण में इनकी भूमिका

यम – अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह यम के अंतर्गत आते हैं। यमों का सार्वभौम रूप से पालन करने के लिए कहा गया है तथा इनको महाव्रत की संज्ञा दि गई है। "किसी जाति(योनि), देश(स्थान), काल(समय) और किसी के द्वारा अपने अनुकूल बनाए गए नियमों से इन यमों को सीमित नहीं किया जा सकता, सर्वत्र भूगोल में, सब विषयों में और सब प्रकार से यमों का पालन करना महाव्रत कहलाता है।"[6]

अहिंसा का स्वरूप – सब प्रकार से सर्वकाल में समस्त प्राणियों से द्रोह न करना अर्थात मन, वचन और कर्म से किसी भी प्राणी को पीड़ा न पँहुचाना अद्रोह रूप अहिंसा है।[7] अहिंसा पालन में परिपक्व होने पर उस योगी का सब प्राणियों के प्रति वैर भाव छूट जाता है और उसके उपदेश को समझने वाले और वैसा ही आचरण करने वाले का भी यथायोग्य अपने आचरण के अनुसार वैर भाव छूट जाता है। [8]

वेद में कहा गया है - हे अविद्यारूपी अन्धकार के निवारक जगदीश्वर वा विद्वन् ! जिससे सब प्राणी मित्र की दृष्टि से मुझको सम्यक् देखें मैं मित्र की दृष्टि से सब प्राणियों को सम्यक् देखूँ, इस प्रकार सब हम लोग परस्पर मित्र की दृष्टि से देखें, इस विषय में हमको दृढ़ कीजिये।[9] अहिंसा को यमों मे श्रेष्ठ कहा गया है। अहिंसा सदाचरण का मूल है। यदि प्रत्येक मनुष्य में अहिंसा का भाव आ जाए तो सहज ही सब झगड़े समाप्त हो जाएंगे, परस्पर द्वेष की भावना नष्ट हो जाएगी और सभी प्रीतिपूर्वक व्यवहार करेंगे। इस प्रकार की भावना श्रेष्ठ समाज के लिए आवश्यक है।

सत्य का स्वरूप – जो पदार्थ जैसा हो उसके उसके संबंध में वैसी ही वाणी और वैसा ही मन होना सत्य है।[10] महर्षि मनु ने कहा है कि प्रिय सत्य हो तो बोलना चाहिए, अप्रिय सत्य नहीं बोलना चाहिए। अप्रिय सत्य बोलने से वक्ता का ही अनिष्ट होता है।[11] सत्याचरण के बिना समाज को श्रेष्ठ बनाने की कल्पना नहीं की जा सकती।

अस्तेय का स्वरूप – अशास्त्रीय अर्थात अवैधरूप से दूसरों के पदार्थों को लेना स्तेय है इसके विपरीत किसी दूसरे के पदार्थ में किंचित भी आसक्ति ना होना अस्तेय है।[12] अस्तेय मे प्रतिष्ठ होने पर उत्तम पुरुषार्थ के अनुकूल फल प्राप्ति, अन्यों से सहायता तथा ईश्वर से ज्ञान, बल औ. सुख की प्राप्ति होती है।[13] उत्कृष्ट समाज के लिए यह आवश्यक है की प्रत्येक व्यक्ति चोरी के भाव का त्याग करे।

ब्रह्मचर्य का स्वरूप – व्यासभाष्य के अनुसार गुप्तेन्द्रिय का संयम करना ब्रह्मचर्य है। वेदों का पढ़ना, ईश्वरोपासना करना और वीर्य की रक्षा करना ब्रह्मचर्य है।[14] जब व्यक्ति मन, वचन और शरीर से ब्रह्मचर्य का पालन दृढ़ बना लेता है तब बौद्धिक और शारीरिक बल की प्राप्ति होती है। उससे वह अपनी तथा अन्यों की रक्षा करने में, विद्याप्राप्ति तथा विद्यादान में समर्थ हो जाता है।[15] अतः एक शिष्ट समाज के निर्माण के लिए ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए।

अपरिग्रह का स्वरूप – आवश्यकता से अधिक धन, भोग, साधन और वस्तुओं का संचय न करना अपरिग्रह है।[16] इसका अर्थ यह नहीं है कि मनुष्य कमाना छोड़ दे। अपरिग्रह के पालन से व्यक्ति के लोभ, मोह आदि दुर्गुण दूर होते हैं। प्रत्येक व्यक्ति को अपरिग्रह का पालन करते हुए जीवनयापन करना चाहिए तथा अपनी आवश्यकता से अधिक धन, भोग, साधन आदि का दान करना चाहिए। श्रेष्ठ समाज के लिए ऐसे गुणों का होना आवश्यक है।

नियम – शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान ये नियम के अंतर्गत रखे गए हैं।

शौच का स्वरूप – शौच अर्थात् शुद्धि। शुद्धि के दो प्रकार हैं- एक बाह्य और दूसरी आन्तरिक। शरीर, वस्त्र, स्थान, पात्र, भोजन आदि को शुद्ध रखना और धन, सम्पत्ति को न्यायपूर्वक उपार्जित करना बाह्य शुद्धि है तथा अविद्या, मिथ्याभिमान, राग, द्वेष, काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि को दूर करना आन्तरिक शुद्धि है।[17] बाह्य तथा आन्तरिक शुद्धि के हो जाने से बुद्धि की शुद्धि, मन की प्रसन्नता, एकाग्रता, इन्द्रियों पर नियन्त्रण तथा आत्मा व परमात्मा को जानने की योग्यता प्राप्त होती है।[18] अतः जब प्रत्येक व्यक्ति शुद्धता का पालन करेगा तो पर्यावरण प्रदूषण भी नहीं होगा फलस्वरूप बीमारियाँ नहीं होंगी जिससे एक स्वस्थ समाज का निर्माण करने मे सहायता प्राप्त होगी।

सन्तोष का स्वरूप – सम्पूर्ण पुरुषार्थ के पश्चात् जो भी उपलब्धि हो, उसी में सन्तुष्ट रहना, उससे अधिक की इच्छा न करना, सन्तोष है।[19] चूंकि आज का जीवन प्रतिस्पर्धा प्रधान है जिस कारण प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे से आगे निकलने मे लगा हुआ है। इस प्रतिस्पर्धा में चिंता, तनाव और द्वेष उसे सहज ही घेर लेते हैं जिस कारण वह सुखी नहीं रह पाता है। संतोष का पालन करने मात्र से उसके ये सब दु:ख बड़ी सरलता से नष्ट हो जायेंगे। क्योंकि कहा गया है कि "पूर्ण सन्तोष का पालन करने से सांसारिक समस्त सुखों से उत्तम सुख की प्राप्ति होती है।"[20] अत: सुखी समाज के लिए संतोष का पालन करना आवश्यक है।

तप का स्वरूप – धर्माचरण करते हुए हानि-लाभ, सुख-दु:ख, मान-अपमान, सर्दी-गर्मी और भूख-प्यास आदि को शान्त चित्त से सहन करना तप है।[21] लेकिन आज के समय में जीवन ठीक इसके विपरीत है। क्योंकि किसी का मन शांत ही नहीं है जिस कारण मानसिक रोगियों की संख्या मे लगातार वृद्धि हो रही है। तप के अनुष्ठान द्वारा वात, पित्त, कफ की विषमता से उत्पन्न विकार, तमोगुण से उत्पन्न आलस्यादि दोषों के नाश हो जाने से शरीर स्वस्थ, बलवान्, स्वच्छ और स्फूर्तिमान् होता है।[22] इन सबको प्राप्त करके ही व्यक्ति अपना कार्य सुगमता और सफलता पूर्वक कर सकता है।

स्वाध्याय का स्वरूप – वेद और वेदानुकूल मोक्ष के स्वरूप को एवं उसके साधन, बाधकों को बतलाने वाले ग्रन्थों को पढ़ना-पढ़ाना और ईश्वर के स्वरूप को प्रकाशित करने वाले मन्त्रों एवं प्रणव आदि का अर्थसहित जप करना स्वाध्याय है।[23] वेदादि मोक्ष शास्त्रों के पठन-पाठन, प्रणव तथा गायत्री आदि मन्त्रों के अर्थ सहित जप से ईश्वर, वैदिक विद्वान्, योगी आदि धार्मिक महापुरुषों के साथ सम्बन्ध हो जाता है तथा उनसे विविध उत्तम कार्यों में सहायता प्राप्त होती है।[24] तैत्तिरीयोपनिषद् में वर्णन मिलता है कि "स्वाध्याय की कभी अवहेलना तथा आलस्यपूर्वक त्याग नहीं करना चाहिए।"[25]

ईश्वरप्रणिधान का स्वरूप – समस्त विद्याओं को देने वाले परमगुरु ईश्वर में समस्त कर्मों को समर्पित कर देना, उसकी भक्ति करना, व्यवहार में उसके आदेशों का पालन करना, शरीर आदि पदार्थों को उसके मानकर धर्माचरण करना, कर्मों का लौकिक फल न चाहना, ईश्वरसाक्षात्कार को ही लक्ष्य बनाकर कार्यों को करना ईश्वरप्रणिधान है।[26]

उपसंहार एवं निष्कर्ष

समाज का प्रत्येक वर्ग यम और नियम से पूर्णतया जुड़ा हुआ है अत: यम और नियम की वर्तमान समाज मे उपादेयता सर्वाधिक होगी क्योंकि अहिंसा विहीन समाज, सत्य विहीन समाज, अस्तेय विहीन समाज, ब्रह्मचर्य विहीन समाज, अपरिग्रह विहीन समाज, समाज ना होकर अराजक जीवन परिपाटी होगी जिससे किसी भी प्रकार की नि:श्रेयस सिद्धि नहीं होगी। ठीक इसी प्रकार शौच विहीन समाज, सन्तोष विहीन समाज, तप विहीन समाज, स्वाध्याय विहीन समाज और ईश्वरप्रणिधान विहीन समाज, एक समाज ना कर पशुवत जीवन शैली होगी।

अत: उपर्युक्त विवरण से निष्कर्ष रूप में यह निश्चित होता है कि श्रेष्ठ समाज के निर्माण में योग में वर्णित यम नियम की उपादेयता सर्वाधिक होगी।

सन्दर्भ सूची

1. परिव्राजक, स्वामी सत्यपति, योग दर्शनम्, रोजड़, दर्शन योग महाविद्यालय, संस्करण-द्वितीय 2003 पृ.स.-173

2. “यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि।”- पातञ्जल योगदर्शन 2/29

3. “अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः।” - पातञ्जल योगदर्शन 2/30

4. “शौचसन्तोषतपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः।” - पातञ्जल योगदर्शन 2/32

5. सरस्वती, दयानंद, संस्कारविधिः, दिल्ली, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, संस्करण- 17वाँ, 2010 पृ.स.-84

6. “जातिदेशकालसमयानवच्छिन्नाः सार्वभौमाः महाव्रतम् ।” - पातञ्जल योगदर्शन 2/31

7. शास्त्री, आचार्य राजवीर, पातञ्जल-योग-दर्शन भाष्यम्, दिल्ली, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, संस्करण-चतुर्थ 2005 पृ.स.-278

8. “अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः।” - पातञ्जल योगदर्शन 2/35

9. दृते दृंह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्।
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे। मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे।। - महर्षि दयानंद कृत यजुर्वेदभाष्य

10. परिव्राजक, स्वामी सत्यपति, योग दर्शनम्, रोजड़, दर्शन योग महाविद्यालय, संस्करण-द्वितीय 2003 पृ.स.-174

11. “सत्यं ब्रूयात प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात सत्यप्रियम्। प्रियं च नानृतं ब्रूयोदेव धर्मः सनातनः।" - मनुस्मृति 4/238

12. परिव्राजक, स्वामी सत्यपति, योग दर्शनम्, रोजड़, दर्शन योग महाविद्यालय, संस्करण-द्वितीय 2003 पृ.स.-175

13. वही पृ.स.-189

14. वही पृ.स.-175

15. वही पृ.स.-189

16. शास्त्री, आचार्य उदयवीर, योगदर्शनम्, दिल्ली, विजयकुमार गोविन्दराम हासानंद, संस्करण-2015.पृ.स.-193

17. परिव्राजक, स्वामी सत्यपति, योग दर्शनम्, रोजड़, दर्शन योग महाविद्यालय, संस्करण-द्वितीय 2003 पृ.स.180

18. वही पृ.स.-183

19. वही पृ.स.-180

20. वही पृ.स.-194

21. वही पृ.स.-180

22. वही पृ.स.-195

23. परिव्राजक, स्वामी सत्यपति, योग दर्शनम्, रोजड़, दर्शन योग महाविद्यालय, संस्करण-द्वितीय 2003 पृ.स.- 180

24. वही पृ.स.-197

25. "स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्" – तैत्तिरीयोपनिषद् 1-11-1

26. परिव्राजक, स्वामी सत्यपति, योग दर्शनम्, रोजड़, दर्शन योग महाविद्यालय, संस्करण-द्वितीय 2003 पृ.स.-180-181